International Journal of Hindi Research
www.hindijournal.com
ISSN: 2455-2232
Received: 15-02-2025, Accepted: 16-03-2025, Published: 31-03-2025
Volume 11, Issue 1, 2025, Page No. 93-96

बस्तर के दशहरा मेला का ऐतिहासिक महत्व

संजय लकड़ा
सहायक प्राध्यापक, इतिहास विभाग, शासकीय संत गहिरा गुरु रामे वर महाविद्यालय, लैलूंगा, रायगढ़, छत्तीसगढ़, भारत

सारांश
बस्तर के आदिवासियों की अभूतपूर्व भागीदारी का ही प्रतिफल है कि बस्तर दशहरा की राष्ट्रीय पहचान स्थापित हुई है। छत्तीसगढ के जगदलपुर नगर में दशहरा अत्यन्त गरिमा और सांस्कृतिक वैभव के साथ मनाया जाता रहा है। भूतपूर्व बस्तर रियासत में टेम्पल व्यवस्था के तहत पूर्णतः सार्वजनिक दशहरा पर्व मनाया जाता था। समय बदला, व्यवस्था, परिस्थितियाँ बदली, समाज बदला और इसके साथ मनुष्य का जीवन भी बदला। शासन ने जन भावनाओं का सम्मान करते हुए इसमें अपनी रचनात्मक भूमिका निर्धारित की। ऐसी भूमिका कि यह परम्परा लगातार विकसित होती रहे। बस्तर का आदिम लोक जीवन अपनी ऐतिहासिक शक्ति को भूलकर इस वैज्ञानिक युग में भी अगर अदृश्य देवी–देवताओं के सम्मोहन में बंधा हुआ है। धर्म पर आधारित यह सम्मोहन ही उसे भरोसा दिलाता है कि अगला जन्म इससे भी बेहतर होगा।

मूल शब्दः बस्तर दशहरा, दशहरा पर्व, बस्तर, आदिवासी। आदि।

दुनिया के किसी भी आदिवासी इलाके की तरह बस्तर के आदिम समाज में भी काल्पनिक देवी–देवताओं का मानसिक साम्राज्य पूरी दृढ़ता से अपनी जड़ें जमाये हुये है। यह और बात है कि यहाँ के आदिवासी अपने व्यक्तित्व और व्यवहार में स्वंय उन देवी देवताओं से भी अधिक शक्तिशाली हैं, जिन्हें वे स्वयं से भी अधिक शक्तिशाली मानते आ रहे हैं। उसे न तो अतीत की स्मृतियाँ कुरेदती है और न ही भविष्य की चिंता सताती है। किसी भी अंचल या धरती के लिये किसी टुकड़े की लोक संस्कृति तत्कालिन लोक मानस और परिस्थितियों पर निर्भर करती है। युग की बदली हुई परिस्थितियों से अर्न्तक्रिया करते हुये जब लोक मानस और लोक बदलता है तब, लोक संस्कृति का परिवर्तन सहज स्वाभाविक है, यह बात अलग है कि यह परिवर्तन लोक की प्रकृति के अनुसार होने से उतना प्रभावी न प्रतीत होता हो जितना कि उच्चवर्गीय संस्कृति में संभव होता है। यही है आदिवासियों के उल्लासमय, सादगीपूर्ण नृत्य संगीत से पूर्ण जीवन का रहस्य। प्राकृतिक और पारिवारिक सुख को दैवीय प्रकोप मानकर पूरी भक्ति और श्रद्धा के साथ अपनी कृतज्ञता प्रकट करते हुये अराधना के स्वर में झूम उठता है, यहीं से प्रारंभ होती है आदिवासियों के त्योहारों और मेलों की श्रृंखला, जो कि उनके संघर्षशील और श्रमसाध्य जीवन में वर्ष भर उल्लास और मधुरता घोले रहती है।

इतिहास

बस्तर के दशहरा पर्व की, रथयात्रा की शुरूआत सन् 1408 ई. के बाद चालुक्य वंशानुक्रम के चैथे शासक राजा पुरूषोत्तम देव ने की थी। अंचल के आदिवासियों में धार्मिक भावना को सही दिशा प्रदान करने का उद्देश्य लिये राजा पुरूषोत्तमदेव ने जगन्नाथपुरी की यात्रा और अपनी प्रजा को साथ ले जाने का निश्चय किया। राजा के इस प्रस्ताव से व्यापक प्रभाव पड़ा। लोगों के मन में मुफ्त यात्रा, वह भी राजा के साथ जाने का उमंग के भाव के साथ अंचल के मुरिया, भतरा, गोंड, धाकड़, माहरा तथा अन्य जातियों के मुखियाओं ने राजा के साथ जाने की मनः स्थिति बनाई। एक शुभ मुहुर्त देख कर राजा, यह ऐतिहासिक यात्रा के लिये रवाना हुए। इस कष्ट–साध्य यात्रा में पैदल ही जाना था, राजा स्वयं सवारियों का प्रयोग नहीं किया।

एक जनश्रुति के अनुसार राजा पुरूषोत्तमदेव ने अपनी प्रजा एवं सैन्यदल के साथ जगन्नाथपुरी पहुंचे। पुरी के राजा को जगन्नाथ स्वामी नें स्वप्न में यह आदेश दिया कि बस्तर नरेश की अगवानी व उनका सम्मान करें, वे भक्ति, मित्रता के भाव से पुरी पहुँच रहे है। पुरी के नरेश ने बस्तर नरेश का राज्योचित स्वागत किया। बस्तर के राजा ने पुरी के मंदिरों में एक लाख स्वर्ण मुद्राएँ, बहुमूल्य रत्न आभूषण और बेशकीमती हीरे–जवाहरात जगन्नाथ स्वामी के श्रीचरणों में अर्पित किया। जगन्नाथ स्वामी ने प्रसन्न होकर सोलह चक्कों का रथ राजा को प्रदान करने का आदेश प्रमुख पुजारी को दिया। इसी रथ पर चढ़कर बस्तर नरेश और उनके वंशज दशहरा पर्व मनायें साथ ही 'लहुरी रथपति' की उपाधि देने का निर्देश दिया। राजा पुरूषोत्तमदेव को लहुरी रथपति की उपाधि से विभूषित किया गया।

पुरी नरेश से स्थायी मैत्री संधि कर बस्तर नरेश वापस लौटे, साथ में भगवान जगन्नाथ, बलभद्र सुभद्रा की काष्ठ प्रतिमा अपने साथ लाए और भगवान की पूजा अर्चना के लिए कुछ आरण्यक ब्राह्मण परिवारों को भी अपने साथ लेकर आये, जो आगे चलकर बस्तर राज्य में ही बस गए। राजा पुरूषोत्तम देव ने जगन्नाथपुरी से वरदान स्वरूप मिले सोलह चक्कों के रथ का विभाजन करते हुए रथ के चार चक्कों को भगवान जगन्नाथ को समर्पित कर दियादऔर शेष 12 पहियों का विशाल काष्ठ रथ माँ दन्ते वरी को अर्पित कर दिया, तब से दशहरा में दन्ते वरी के छत्र के साथ राजा स्वयं भी रथारूढ़ होने लगे। मधोता ग्राम में पहली बार दशहरा रथ यात्रा संवत् 1468–69 (1411–12 ई.) के लगभग प्रारंभ हुई। कई वर्षों के बाद 12 चक्कों के रथ संचालन में असुविधा होने के कारण आठवें क्रम के शासक राजा वीरसिंह ने संवत् 1610 के पश्चात् आठ पहियों का विजय रथ और चार पहियों का फूल रथ प्रयोग में लाया। तब से लेकर यह परम्परा आज भी निर्बाध रूप से जारी है।

रियासत काल में राजा मांई दन्ते वरी का छत्र लेकर स्वयं रथों पर विराजमान होते थे, इन रथों पर राजपिवार की कुल देवी, माँ दुर्गा के एक रूप, माँ दन्ते वरी के छत्र को रथयात्रा के दौरान रथ पर आरूढ़ किया जाता है। इसलिए बस्तर दशहरा में फूल रथ चार चक्कों वाला रथ होता है तथा भीतर रैनी और बाहर रैनी के लिए आठ चक्कों के रथ परिक्रमा का विधान है। प्रतिवर्ष एक नया रथ निर्माण किया जाता है। एक वर्ष चार चक्कों का होता है, वहीं दूसरे वर्ष आठ चक्कों का रथ निर्माण किया जाता है। प्रतिवर्ष आयोजन होने वाले दशहरा पर्व में मूल रूप से दो विशालकाय रथ परिक्रमा के लिए उपयोग में लाए जाते है। प्रत्येक रथ

निर्माण के लिए लगभग 55 से 60 घनमीटर विशेष प्रजाति की लकड़ियों की आवश्यकता होती है जिसका मूल्य समय के अनुसार लाखों रूपये का आंका गया है। कोई भी रथ दो वर्षों के परिक्रमा बाद चलन से बाहर कर दिया जाता है।

बस्तर के जनजातीय समाज में पशु–पक्षियों की बलिप्रथा बहुतायत में पाई जाती है। कई मामलों में देवी–देवताओं के पसंद के अनुरूप तथा रंग के आधार बलि दी जाती है। कई बार संबंधित देवी–देवताओं को खुश करने के उद्धेश्य से रंग विशेष का बकरा अर्पित करने का मन्नत मांगता है जो पूर्ण हो जाने के बाद उसे पूरा करता है, अपने आप में महत्व रखता है।

▪ यहाँ रावण नहीं मारा जाता

बस्तर दशहरा देश का ही नहीं, वरन् पूरे वि व का अनूठा महापर्व है, जो असत्य पर सत्य की विजय का प्रतीक तो है, मगर बस्तर दशहरा में रावण नहीं मारा जाता, रामायण से इसका कोई संबंध नहीं, अपितु बस्तर की आराध्या देवी माँ दन्ते वरी सहित अनेक देवी–देवताओं की 75 दिनों तक पूजा–अर्चना होती है।

▪ पाठ जात्रा

वि व प्रसिद्ध बस्तर दशहरा का विधिवत् शुभारंभ श्रावण मास के अमावस्या से अर्थात् हरियाली अमावस्या से प्रारंभ होता है। दशहरा पर्व विधान के तहत प्रतिवर्ष रथ यात्रा के लिए रथ निर्माण किया जाता है। अमावस्या के दिन नवीन रथ निर्माण के लिए लकड़ी का एक बड़ा टुकड़ा लाया जाता है जिसे 'टुरलु खोटला' कहा जाता है। इस लकड़ी के टुकड़े को स्थानीय दन्ते वरी मांई मंदिर के सामने रखा जाता है और रथ निर्माण में लगने वाले औजारों के साथ पूजा अर्चना की जाती है। जिसे 'पाठ जात्रा' कहा जाता है। मांझी, मुखिया, चालकी, मेम्बरिन, जनप्रतिनिधियों, विधायक, और गणमान्य नागरिकों के समक्ष पुजारी के द्वारा विधिवत् टुरलु खोटला पूजा का उद्धेश्य यह होता है कि जिस निमित्त लकड़ी का तना लाया गया है, उसकी तथा अन्य स्थानीय देवी–देवताओं के साथ–साथ राज्य की देवी अर्थात् दन्ते वरी देवी की आराधना की जाती है। लोक–वि वास है कि जिन देवी–देवताओं को पर्व विशेष के लिए आव्हान किया है, वे देवी–देवता पर्व समाप्ति तक कहीं अन्यत्र न जायें और पर्व निर्विघ्न सम्पन्न हो, लकड़ी के मोटे कुंदे पर कीलों को गाड़कर अपने वि वास को दृढ़ करते आज भी देखा जा सकता है।

▪ डेरी गड़ाई पूजा विधान

पाठ–जात्रा से प्रारंभ हुई पर्व की दूसरी रस्म को 'डेरी गड़ाई' कहा जाता है। साल प्रजाति की दो शाखा युक्त डेरी, (स्तम्भनुमा लकड़ी का लगभग 10 फुट का ऊँचा लकड़ी) होता है, जिसे परम्परा के अनुसार दशहरा पर्व के प्रारंभ होने के पूर्व स्थानीय सिरहासार भवन में स्थापित की जाती है। 15 से 20 फीट की दूरियों पर दो गढ्ढे किए जाते हैं, इन गढ्ढों में जनप्रतिनिधियों और दशहरा समिति के सदस्यों की उपस्थिति में पुजारी के द्वारा डेरी में हल्दी, कुमकुम, चंदन का लेप लगाकर दो सफेद कपड़े बाँधकर पूजा सम्पन्न करता है। इन गढ्ढों पर डेरी स्थापित करने के पूर्व जीवित मोंगरी मछली और अण्डा छोड़ी जाती है तथा फूला लाई डालकर डेरी स्थापित की जाती है।

इस शाखा–युक्त डेरी के गड़ाई को एक तरह से मण्डापाच्छादन का स्वरूप माना जाता है। इस डेरी की पूजा–पाठ के साथ स्थापना करके दशहरा पर्व निर्विघ्न सम्पन्न करने की कामना की जाती है। इस डेरी गड़ाई के पश्चात् रथ निर्माण की प्रक्रिया प्रारंभ की जाती है। यह रस्म भादों शुक्लपक्ष द्वादश अथवा तेरस के दिन पूर्ण कर ली जाती है, डेरी गड़ाई के साथ ही जंगलों से लकड़ी और निर्धारित गाँवों से कारीगरों का आना प्रारंभ हो जाता है। डेरी गड़ाई अर्थात् स्तम्भारोहण के पश्चात् रथ निर्माण की प्रक्रिया प्रारंभ कर दी जाती है।

▪ काछिनगादी पूजा विधान

बस्तर अंचल में काछिन देवी, रण की देवी कहलातीं हैं। बस्तर दशहरा का शुभारंभ इतना सहृदय, इतना प्रेरक, भाव, मर्मस्पर्शी और श्लांघनीय लगता है कि चिंतक उसमें खो जाता है। 'काछिन गादी' का अर्थ होता है, काछिन की देवी को गादी अर्थात् गद्दी या आसन प्रदान करना, जो काँटों की होती है। काले रंग के कपड़े पहनकर काँटेदार झूले की गद्दी पर आसीन होकर जीवन में कंटकजयी होने का सीने में हाथ रखकर सांकेतिक संदेश देती हैं। काछिन देवी बस्तर दशहरा में प्रतिवर्ष निर्विघ्न आयोजन हेतु स्वीकृति और आशीर्वाद प्रदान किया करतीं हैं। मान्यता के अनुसार 'काछिन देवी' पशुधन और अन्न–धन की रक्षा करती है। प्रतिवर्ष माहरा जाति की एक नाबालिक बालिका पर काछिन देवी आरूढ़ होती हैं।

▪ रैला देवी से अनुमति

काछिन गुड़ी में काछिन गादी के रस्म अदायगी के पश्चात् जगदलपुर नगर के गोलबाजार में संध्या ''रैला पूजा'' होती है। रैला पूजा मिरगान जाति की पूजा है। रैला पूजा के अन्तर्गत मिरगान महिलाएँ अपनी मिरगानी बोली में एक गीत–कथा को गा–गाकर कर प्रस्तुत करती हैं, जिसमें 'रैला देवी' का बड़ा ही हृदय–स्पर्शी एवं कारूणिक चित्रण मिलता है। राजकुमारी रैला देवी का वही श्राद्धकर्म बस्तर के दशहरा पर्व में रैला–पूजा के नाम से जाना जाता है। इस देवी का अब तक कोई मंदिर नहीं है। गोलबाजार के अंदर एक स्थल पर प्रतिवर्ष काछिन देवी के पूजा के बाद संध्या के समय चिन्हित स्थल पर रैला देवी के आयोजन के लिए मिरगान जाति का पुजारी तथा इस जाति की महिलाएँ एकत्रित होती हैं। ग्राम तेलीमारेंगा की अनुसूचित जाति की कुवाँरी कन्या जो कि रियासत काल से उसी ग्राम से निभाती चली आ रहीं हैं, उन्हें परम्परा के अनुसार प्रतिवर्ष अवसर दिया जाता है। इस रैला पूजा में भी राज परिवार तथा पुजारी रैला देवी से पर्व निर्विघ्न सम्पन्न होने की कामना करता है।

▪ कलश स्थापना

भारतीय संस्कृति में कलश को विविध सांस्कृतिक कार्यक्रमों में सर्वोच्च स्थान दिया गया है। जीवन के हर क्षेत्र में धार्मिक कार्य का शुभारंभ मंगल कलश स्थापित करके ही किया जाता है। छोटे अनुष्ठानों से लेकर बड़े–बड़े धार्मिक कार्यों में कलश का उपयोग किया जाता है। इस प्रकार कलश भारतीय संस्कृति का वो प्रतीक है जिसमें समस्त मांगलिक भावनाएं निहित होती हैं। शारदीय नवरात्र उत्सव पर, शहर में आस्था के ज्योति जगमगाते देखे जा सकते हैं। मांई दन्ते वरी मंदिर सहित सार्वजनिक दुर्गा पण्डालों में तथा शहर के अन्यान्य मंदिरों में मनोकामना दीप जलते हैं। बस्तर की आराध्य देवी मां दन्ते वरी के मंदिरों में भी आस्था के ज्योति जलती हैं। हजारों भक्त श्रद्धा भक्ति के साथ मनोकामना ज्योति कलश स्थापित करते हैं। यहाँ बस्तर नहीं देश भर के अनेक राज्यों के अलावा विदेशों से भी भक्त तेल व घी के ज्योति जलाते हैं।

▪ जोगी बिठाई

बस्तर के दशहरा के संदर्भ में योगी ही, जोगी की संज्ञा पाता है, जो दशहरा दर्शन में प्रमुख भूमिका तो निभाता है किन्तु रथ चालन का साक्षी और दशहरा समारोह का दर्शक नहीं होता बल्कि इसकी आराधना, साधना और संकल्प को सम्मान देते स्थानीय सिरहासार में लोग जोगी का दर्शन करते हैं।

- **फूल रथ परिक्रमा**

परम्परा के अनुसार आश्विन शुक्लपक्ष द्वितीया से लेकर सप्तमी तिथि तक चलने वाले फूलरथ की परिक्रमा का चरण प्रारंभ हो जाता है। इन तिथियों में प्रतिदिन रथ परिक्रमा होती है। ग्रामीण क्षेत्रों से आए हुए हजारों ग्रामीणों के द्वारा फूल रथ का खींचा जाना एक विहंगम दृश्य उत्पन्न करता है, जो यह बताता है कि भक्ति में कितना आनंद और सुख छिपा हुआ है। शक्ति परम्परा का यह ऐतिहासिक पर्व बस्तर दशहरा अपने शान और विलक्षणता के लिए न केवल भारत में प्रसिद्ध है वरन् इसका अवलोकन करने के लिए विदेशियों की भी आमद बस्तर में होती है।

- **महाष्टमी पूजा विधान**

नवरात्र के अष्टमी तिथि के अवसर पर सुबह से ही मंदिरों में भक्तों का तांता लगना शुरू हो जाता है। हजारों की संख्या में भक्त, सपरिवार मंदिर में देवी दर्शन कर यज्ञ अनुष्ठान पर शामिल होते हैं। नवरात्र के आठवें दिन महागौरी की पूजा अर्चना की जाती है। अष्टमी के दिन नगर का पूरा माहौल धार्मिक रहता है। देवी दरबारों में आस्था और भक्ति का संगम दिखाई देता है। बताया जाता है कि दुर्गा जी के इस रूप की पूजा करने से भक्तों को सभी प्रकार के सुख प्राप्त होते हैं, और इससे भक्तों के मन को शांति मिलती है। शहर के दन्ते वरी मंदिर के साथ हिंग्लाजीन मंदिर, शीतला मंदिर, काली कंकालिन मंदिर, विभिन्न दुर्गा मंदिर, गायत्री मंदिर तथा शहर के अन्य देवी मंदिरों में सुबह से शाम तक भक्तों की भारी भीड़ रहती है। सार्वजनिक दुर्गा मण्डपों में भी यज्ञ–हवन सम्पन्न किया जाता है।

- **निशा जात्रा**

बस्तर दशहरा के रस्मों में आश्विन माह के अष्टमी तिथि तथा नवमी तिथि को रथ परिक्रमा नहीं होती। इस दिन आँचलिक देवी–देवताओं के सम्मान में बलि देकर प्रसन्न करने का दिन होता है। यह कार्य आधी रात को सम्पन्न किया जाता है। आधी रात को निशा–जात्रा रस्म पर बकरों के अलावा कुम्हड़ा और मछली की बलि दी जाती है। लोगों का मानना है कि इससे अंचल में देवी की कृपा बनी रहती है। यह परम्परा रियासत काल से चली आ रही है। रियासत कालीन बलि की परम्परा में परिवर्तन अवश्य हुए हैं किन्तु पशु बलि आज भी जारी है। इस रहस्यमयी निशा जात्रा में कालान्तर में परिवर्तन करते हुए अब यहाँ 12 बकरों की बलि देने का रस्म बन कर रह गया है।

- **कुंवारी पूजा विधान**

महानवमी पूजन में कुवांरी पूजा के अन्तर्गत नौ कुवांरी कन्याओं एवं एक बालक की पूजा की जाती है। नवरात्र पूजन से जुड़ी कई परंपराएं हैं। जैसे कन्या पूजन। इसका धार्मिक कारण यह है कि कुंवारी कन्याएं माता के समान ही पवित्र और पूजनीय होती हैं। दो वर्ष से लेकर दस वर्ष की कन्याएं साक्षात माता का स्वरूप मानी जाती हैं। यही कारण है कि इसी उम्र की कन्याओं के विधिवत पूजन कर भोजन कराया जाता है। इसे कुंवारी पूजा भी कहा जाता है। नवरात्र में सभी तिथियों को एक–एक और अष्टमी या नवमी को नौ कन्याओं की पूजा होती है।

- **जोगी उठाई**

नवें दिन जोगी के समक्ष इष्ट देवी की पूजा करके जोगी उठाने की रस्म पूरा किया जाता है। जोगी अपने स्थान से उठकर नौ दिनों के योग अनुष्ठान विधान से मुक्त हो जाता है। उसके पहले बिठाई के दिन मावली मंदिर से प्रदाय किए गए खांडा अर्थात् तलवार पूजा–विधान के साथ मूल मंदिर में पुनः स्थापित कर दी जाती है। नौ दिनों तक अनवरत बैठे जोगी, नवमी तिथि को संध्या के समय उठकर स्थानीय काली कंकालिन, राम मंदिर तथा मावली मंदिर में पूजा–अर्चना करता है। 9 दिनों तक योग की अवस्था में बैठा योगी को पूजा विधान के बाद निर्धारित स्थान से उठाया जाता है। उठाने का कार्य पर्व के पुजारी, चालकी, मांझी, मेम्बरीन, गणमान्य नागरिकों और दशहरा समिति के सदस्यों की उपस्थिति में सम्पन्न किया जाता है। जोगी बिठाई के दिन जिस क्रम से मंदिरों के देवी–देवताओं का दर्शन जोगी 9 दिनों के लिए स्थान ग्रहण करता है उसी क्रम में जोगी उठकर देवी–देवताओं का आभार मानते हुए पूजा करता है। मावली मंदिर के खांडा को पुनः स्थापित करता है। वहाँ से लौटकर अपने कुलदेवी की आराधना करता है तथा पर्व के निर्विघ्न सम्पन्न होने के लिए आभार प्रदर्शित करते हुए जोगी उपवास तोड़ता है।

- **मावली परघाव**

दन्तेवाड़ा से मावली देवी आमंत्रण पाकर दशहरा में शामिल होने जगदलपुर डोली पर सवार होकर आती हैं, जिन्हें इस खूबसूरत अवसर पर प्रमुख रूप से राज परिवार के सदस्य, कुवंर परिवार, राजगुरू, जनप्रतिनिधि, राजपुरोहित अगुवानी करते हैं। इस स्वागत को ही लोकभाषा में परघाव कहा जाता है। मावली देवी की अगुवानी या स्वागत को ही मावली परघाव कहा जाता है। बस्तर अंचल में मावली देवी के कई स्थानों पर मंदिर है। प्रमख रूप से दन्तेवाड़ा, जगदलपुर, नारायणपुर, मधोता, छोटे देवड़ा, कौड़ावंड, नवागाँव, सिवनी आदि गाँवों में मावली के मंदिर स्थापित हैं। नारायणपुर में मावली के नाम से विशाल मेला का आयोजन भी होता है। बस्तर में मावली को प्रमुख देवी के रूप में पूजा की जाती है, और कई नामों से भी पुकारा जाता है, उन रूपों में पूजा भी की जाती है। बस्तर अंचल में मावली के नाम से कई गाँव भी बसे हैं।

- **भीतर रैनी**

विजयादशमी को अस्त्र–शस्त्र की पूजन का विधान सम्पन्न कर विजय रथ पर देवी छत्र और खड्ग के साथ रथ पर सवार होकर मुख्य पुजारी पूर्ववत् मावली मंदिर की प्रदक्षिणा करते हुए परिक्रमा करता है। इस रथ परिक्रमा विधान में चार पहियों के स्थान पर आठ पहियों वाला विशालकाय रथ परिक्रमा के लिए उपयोग में लाया जाता है। इस रथ के आठ काष्ठ पहिए होते हैं। इसके निर्माण में फूलरथ की अपेक्षा अधिक लकड़ी उपयोग में लाया जाता है, तथा बनावट में भी अंतर होता है। विजय पर्व में चलायमान होने के कारण विजय रथ अथवा भीतर रैनी रथ कहा गया है। यह रथ विजयादशमी के दिन अपने पूर्व निर्धारित मार्ग पर ही परिक्रमा करता है। इसे खींचने के लिए कोड़ेनार–किलेपाल परगना के आदिवासियों का विशेष अधिकार होता है।

- **काछिन जात्रा**

यह रस्म काछनदेवी को विदाई देने का रस्म है, जहां विधि–विधान से काछिन देवी को पूजा–अर्चना के बाद यथाशक्ति बलि देकर कृतज्ञता भेंट की जाती है। भंगाराम चैक स्थित काछिनगुड़ी के अलावा काछिन जात्रा हेतु गुड़ी से कुछ ही दूरी पर स्थान निर्धारित है। यह स्थान भंगाराम चैक से पथरागुड़ा जाने के मार्ग पर बाँवस मुण्डा तालाब के समीप ही सड़क के किनारे है। जात्रा स्थल में बाजे–गाजे के साथ सिराहा, काछिन देवी अपने प्रतीक चिन्हों के साथ पहँचते हैं और साथ में स्थानीय देवी–देवता भी अपनी उपस्थिति दर्ज करते हैं।

- **मुरिया दरबार**

मुर का अर्थ, हल्बी में प्रारंभ या मूल होता है, अर्थात् इस अंचल में प्राचीन समय से बसे हुए आदिवासी परिवारों के लिए मुर शब्द में साथ इया प्रत्यय लगाने के बाद मुरिया कहलाया। मुरिया

अर्थात् मूल निवासी। रियासत काल में आदिवासी संबोधन प्रचलित नहीं था। इसी मूलिया शब्द के अतिशय प्रयोग से मुरिया परिवर्तित हो गया।

- **कुटुम जात्रा**

दशहरा पर्व के अंतिम कड़ी दन्ते वरी मांई जी के छत्र तथा मावली की डोली के विदाई के पूर्व परम्परा के अनुसार दशहरा में शामिल होने आए विभिन्न स्थानों के देवी–देवताओं को कुटुम्ब जात्रा पूजा विधान के बाद बिदाई दी जाती है। इस दौरान ग्राम देवी–देवताओं को बिदाई देते हुए उनके पुजारियों को नवीन वस्त्र व भेंट देकर सम्मानित किया जाता है।

- **दन्ते वरी एवं मावली जी की विदाई**

अत्यन्त महत्वपूर्ण और पवित्र माने जाने वाले दन्ते वरी मांई और मावली मांई की विदाई पूजा विधान के अंतिम रस्म को भी पूरी भव्यता के साथ सम्मानपूर्वक ढंग से आयोजित किया जाता है। इस पवित्र रस्म में जिस तरह मावली परघाव के दिन मांई जी की छत्र और डोली की पूरी भव्यता के साथ स्वागत किया जाता है, उसी सम्मान और आदर के साथ भव्य रूप देकर एक शोभायात्रा के रूप में विदाई की जाती है।

- **श्रम, सहकार का दुर्लभ प्रमाण**

बस्तर दशहरा रथ निर्माण के संदर्भ में उक्ताशय उल्लेखनीय है। 75 दिनों तक चलने वाले वि व के इस विशिष्ट महापर्व बस्तर दशहरा में प्रयुक्त होने वाला विशालकाय काष्ठ रथ प्रतीक है। आंचलिक श्रम साधकों के कला प्रेम और बस्तर की अराध्या मां दन्ते वरी के प्रति उनकी समर्पित शक्ति भावना का दुमंजिले भवन की भांति आँचलिक सौन्दर्य बोध के अनुरूप माटी पुत्रों की महिमा बखानती यह काष्ठ कृति अपनी रचना वैशिष्ट्य के कारण शताब्दियों से वि व के कलाधर्मियों के लिए आश्चर्य का विषय है।

निष्कर्ष

बस्तर का महापर्व ''बस्तर दशहरा'' कई मायनो में लोकप्रिय या बहुयामी है जो आज के आधुनिक युग में भी शहरी व ग्रामीण जनता को अपनी और आकर्षित करता चला आ रहा है। फिर भी कहा जाए तो अनुचित न होगा कि वास्तव मे ं वर्तमान में संचालित बस्तर दशहरा तत्कालीन मूल दशहरे का एक औपचारिकता बस रह गया है। वर्तमान में ग्रामीण जन शहर में दशहरा के दौरान कई परेशानियाँ का सामना करते है। वे केवल एक जिम्मेदारी समझकर यहाँ तक आते है, क्योंकि रियासत काल से दशहरा के विभिन्न कार्य उनके बीच विभक्त कर दिया गया है। इसलिए मांई दन्तेश्वरी का असीम प्यार उन्हे खींच लाता है। यही कारण है कि प्रतिवर्ष वे अपना खर्च कर शहर तक पहुँचते है और परम्परा का निर्वाहन करते है। बस्तर दशहरा संपूर्ण बस्तर के जनों तथा रियासत को जोड़ने वाला महापर्व है। इस महापर्व को रियासत काल में राजा का पूर्ण संरक्षण प्राप्त था किंतु वर्तमान में शासन प्रशासन के सहयोग के बावजूद दशहरा महापर्व में परिवर्तन हो रहा है तथा भावना के स्थान पर औपचारिकता तथा कर्त्तव्य निर्वहन की प्रवृत्ति हावी हो रही है।

संदर्भ ग्रंथ सूची

1. वैणव डॉ. टी.के. (2004) छत्तीसगढ़ के अनुसूचित जनजातियाँ रायपुरः आदिम जाति अनुसन्धान एवं प्रशिक्षण संसथान।
2. लोकबाबू (2021) बस्तर–बस्तर .दिल्लीः राजपाल एण्ड पब्लिकेशन।
3. शर्मा , डॉ.हीरालाल (2010) प्राचीन बस्तर नागपुरः वि व भारती प्रकाशन।
4. श्रीमती एटर. (2018) छत्तीसगढ़ आदिवासी राजवंश रायपुरः वैभव प्रकाशन।
5. अमरोहित, डॉ. गीतेश कुमार. (मार्च, 2021) छत्तीसगढ़ का इतिहास दुर्गः सरस्वती बुक प्रकाशन।
6. प्रसाद, राजीव रंजन (2016) बस्तर 1857 नई दिल्लीः यश पब्लिकेशन।
7. शुक्ला, डॉ. हीरालाल. (2009) बस्तर का मुक्ति संग्राम . भोपालः मध्य प्रदेश हिन्दी ग्रन्थ अकादमी।
8. ठाकुर केदार नाथ – बस्तर भूशण
9. डॉ हीरालाल भुक्ल – छत्तीसगढ का जनजातीय इतिहास
10. लाला जगदलपुरी – बस्तर लोक कला – संस्कृति
11. मदनलाल गुप्ता – छत्तीसग की संस्कृति एवं लोक आयाम के विभिन्न स्वरूप
12. ज़े. आर. वर्ल्यानी एवं वासुदेव साहसी – बस्तर का राजनीतिक एवं संस्कृतिक इतिहास
13. वीरबाला भावसार – आदिवासी कला
14. रामकुमार बेहार एवं नर्मदा प्रसाद श्रीवास्तव – आदिवासी बस्तरे